विषय
चार

विचारक, विश्वास और इमारतें
सांस्कृतिक विकास
(ईसा पूर्व 600 से ईसा संवत् 600 तक)

चित्र 4.1
साँची की एक मूर्ति

इस अध्याय में हम एक हज़ार साल लंबी यात्रा पर जाएँगे। इसमें हम दार्शनिकों के बारे में पढ़ेंगे और यह जानने की कोशिश करेंगे कि उन्होंने समाज में अपनी स्थिति को समझने के क्या प्रयास किए। हम यह भी देखेंगे कि उनके विचार किस तरह से मौखिक और लिखित परंपराओं में संग्रहित हुए तथा उन्हें स्थापत्य और मूर्तिकला के माध्यम से कैसी अभिव्यक्ति मिली। ये सब जनता पर इन विचारकों के स्थायी प्रभाव को दर्शाते हैं। हालाँकि हम बौद्ध धर्म का विशेष अध्ययन करेंगे, यह ध्यान देने की बात है कि यह परंपरा अकेली विकसित नहीं हुई। दूसरी कई परंपराएँ थीं जो एक-दूसरे के साथ लगातार वाद-विवाद और संवाद चला रही थीं।

इन रोमांचक विचारों और विश्वासों की दुनिया के पुनर्निर्माण के लिए इतिहासकार जिन स्रोतों का इस्तेमाल करते हैं उनमें बौद्ध, जैन और ब्राह्मण ग्रंथों के अलावा इमारतों और अभिलेखों जैसे प्रभूत मात्रा में उपलब्ध भौतिक साक्ष्य भी शामिल हैं। उस युग की बची हुई इमारतों में सबसे सुरक्षित है साँची का स्तूप। यह स्तूप इस अध्याय के अध्ययन का एक प्रमुख केंद्र-बिंदु है।

चित्र 4.2
शाहजहाँ बेगम

1. साँची की एक झलक

साँची उन्नीसवीं सदी में

भोपाल राज्य के प्राचीन अवशेषों में सबसे अद्भुत साँची कनखेड़ा की इमारतें हैं। भोपाल से बीस मील उत्तर-पूर्व की तरफ़ एक पहाड़ी की तलहटी में बसे इस गाँव को हम कल देखने गए थे। हमने पत्थर की वस्तुओं, बुद्ध की मूर्तियों और एक प्राचीन तोरणद्वार का निरीक्षण किया... ये अवशेष यूरोप के सज्जनों को विशेष रुचिकर लगते हैं जिनमें मेजर अलेक्ज़ेंडर कनिंघम एक हैं। मेजर अलेक्ज़ेंडर कनिंघम ने... इस इलाके में कई हफ़्तों तक रुक कर इन अवशेषों का निरीक्षण किया। उन्होंने इस जगह के चित्र बनाए, वहाँ के अभिलेखों को पढ़ा और गुंबदनुमा ढाँचे के बीचोंबीच खुदाई की। उन्होंने इस खोज के निष्कर्षों को एक अंग्रेज़ी पुस्तक में लिखा है...

भोपाल की नवाब (शासनकाल 1868-1901), शाहजहाँ बेगम की आत्मकथा *ताज-उल-इकबाल तारीख भोपाल* (भोपाल का इतिहास) से। 1876 में एच.डी. बार्स्टो ने इसका अनुवाद किया।

उन्नीसवीं सदी के यूरोपियों में साँची के स्तूप को लेकर काफ़ी दिलचस्पी थी। फ्रांसीसियों ने सबसे अच्छी हालत में बचे साँची के पूर्वी तोरणद्वार को फ्रांस के संग्रहालय में प्रदर्शित करने के लिए शाहजहाँ बेगम से फ्रांस ले जाने की इजाज़त माँगी। कुछ समय के लिए अंग्रेज़ों ने भी ऐसी ही कोशिश की। सौभाग्यवश फ्रांसिसी और अंग्रेज़ दोनों ही बड़ी सावधानी से बनाई प्लास्टर प्रतिकृतियों से संतुष्ट हो गए। इस प्रकार मूल कृति भोपाल राज्य में अपनी जगह पर ही रही।

भोपाल के शासकों, शाहजहाँ बेगम और उनकी उत्तराधिकारी सुल्तानजहाँ बेगम, ने इस प्राचीन स्थल के रख-रखाव के लिए धन का अनुदान दिया। आश्चर्य नहीं कि जॉन मार्शल ने साँची पर लिखे अपने महत्वपूर्ण ग्रंथों को सुल्तानजहाँ को समर्पित किया। सुल्तानजहाँ बेगम ने वहाँ पर एक संग्रहालय और अतिथिशाला बनाने के लिए अनुदान दिया। वहाँ रहते हुए ही जॉन मार्शल ने उपर्युक्त पुस्तकें लिखीं। इस पुस्तक के विभिन्न खंडों के प्रकाशन में भी सुल्तानजहाँ बेगम ने अनुदान दिया। इसलिए यदि यह स्तूप समूह बना रहा है तो इसके पीछे कुछ विवेकपूर्ण निर्णयों की बड़ी भूमिका है। शायद हम इस मामले में भी भाग्यशाली रहे हैं कि इस स्तूप पर किसी रेल ठेकेदार या निर्माता की नज़र नहीं पड़ी। यह उन लोगों से भी बचा रहा जो ऐसी चीज़ों को यूरोप के संग्रहालयों में ले जाना चाहते थे। बौद्ध धर्म के इस महत्वपूर्ण केंद्र की खोज से आरंभिक बौद्ध धर्म के बारे में हमारी समझ में महत्वपूर्ण बदलाव आए। आज यह जगह भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के सफल मरम्मत और संरक्षण का जीता जागता उदाहरण है।

चित्र 4.3
साँची का महान स्तूप
यदि आप दिल्ली से भोपाल की रेलयात्रा करेंगे तो आप एक पहाड़ी के ऊपर एक मुकुट जैसे इस खूबसूरत स्तूप को देखेंगे। यदि आप गार्ड को सूचित करेंगे तो वह साँची के छोटे से स्टेशन पर दो मिनट के लिए गाड़ी को रोक देंगे – बस इतना समय कि आप गाड़ी से उतर जाएँ। पहाड़ी पर चढ़ते हुए आप पूरे स्तूप समूह को देख सकते हैं – एक विशाल गोलार्ध ढाँचा और कई दूसरी इमारतें जिनमें पाँचवीं सदी में बना एक मंदिर भी शामिल है।

➲ चर्चा कीजिए...

शाहजहाँ बेगम द्वारा किए गए वर्णन की तुलना चित्र 3 से कीजिए। इनमें आप क्या समानताएँ और असमानताएँ पाते हैं?

आखिर इस इमारत का क्या महत्त्व है? यह टीला क्यों बनाया गया और इसके अंदर क्या था? इसके चारों ओर पत्थर की रेलिंग क्यों बनाई गई? इस स्तूप-समूह को किसने बनवाया या इसके लिए धन किसने दिया? इसकी "खोज" कब की गई? ग्रंथों, मूर्तियों, स्थापत्य कला और अभिलेखों के अध्ययन के द्वारा हम इस रोचक इतिहास की खोज कर सकते हैं। आइए, हम प्रारंभिक बौद्ध धर्म की पृष्ठभूमि के अन्वेषण से शुरुआत करते हैं।

2. पृष्ठभूमि

यज्ञ और विवाद

ईसा पूर्व प्रथम सहस्राब्दि का काल विश्व इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ माना जाता है। इस काल में ईरान में जरथुस्त्र जैसे चिंतक, चीन में खुंगत्सी, यूनान में सुकरात, प्लेटो, अरस्तु और भारत में महावीर, बुद्ध और कई अन्य चिंतकों का उद्भव हुआ। उन्होंने जीवन के रहस्यों को समझने का प्रयास किया। साथ-साथ वे इनसानों और विश्व व्यवस्था के बीच रिश्ते को समझने की कोशिश कर रहे थे। यही वह समय था जब गंगा घाटी में नए राज्य और शहर उभर रहे थे और सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में कई तरह के बदलाव आ रहे थे (अध्याय 2 तथा 3)। ये मनीषी इन बदलते हालात को भी समझने की कोशिश कर रहे थे।

स्रोत 1

अग्नि की प्रार्थना

यहाँ पर *ऋग्वेद* से लिए गए दो छंद हैं जिनमें अग्निदेव का आह्वान किया गया है :

हे शक्तिशाली देव, आप हमारी आहुति देवताओं तक ले जाएँ। हे बुद्धिमंत, आप तो सबके दाता हैं। हे पुरोहित, हमे खूब सारे खाद्य पदार्थ दें।

हे अग्नि यज्ञ के द्वारा हमारे लिए प्रचुर धन ला दें। हे अग्नि, जो आपकी प्रार्थना करता है उसके लिए आप सदा के लिए पुष्टिवर्धक अद्भुत गाय ला दें। हमें एक पुत्र मिले जो हमारे वंश को आगे बढ़ाए...

इस तरह के छंद एक खास तरह की संस्कृत में रचे गए थे जिसे वैदिक संस्कृत कहा जाता था। ये स्रोत पुरोहित परिवारों के लोगों को मौखिक रूप में सिखाए जाते थे।

➲ यज्ञ के उद्देश्यों की सूची बनाइए।

2.1 यज्ञों की परंपरा

चिंतन, धार्मिक विश्वास और व्यवहार की कई धाराएँ प्राचीन युग से ही चली आ रही थीं। पूर्व वैदिक परंपरा जिसकी जानकारी हमें 1500 से 1000 ईसा पूर्व में संकलित *ऋग्वेद* से मिलती है, वैसी ही एक प्राचीन परंपरा थी। *ऋग्वेद* अग्नि, इंद्र, सोम आदि कई देवताओं की स्तुति का संग्रह है। यज्ञों के समय इन स्रोतों का उच्चारण किया जाता था और लोग मवेशी, बेटे, स्वास्थ्य, लंबी आयु आदि के लिए प्रार्थना करते थे।

शुरू-शुरू में यज्ञ सामूहिक रूप से किए जाते थे। बाद में (लगभग 1000 ईसा पूर्व -500 ईसा पूर्व) कुछ यज्ञ घरों के मालिकों द्वारा किए जाते थे। राजसूय और अश्वमेध जैसे जटिल यज्ञ सरदार और राजा किया करते थे। इनके अनुष्ठान के लिए उन्हें ब्राह्मण पुरोहितों पर निर्भर रहना पड़ता था।

2.2 नए प्रश्न

उपनिषदों (छठी सदी ई.पू. से) में पाई गई विचारधाराओं से पता चलता है कि लोग जीवन का अर्थ, मृत्यु के बाद जीवन की संभावना और पुनर्जन्म के बारे में जानने के लिए उत्सुक थे। क्या पुनर्जन्म अतीत के

कर्मों के कारण होता था? ऐसे मुद्दों पर पुरज़ोर बहस होती थी। मनीषी परम यथार्थ की प्रकृति को समझने और अभिव्यक्त करने में लगे थे। वैदिक परंपरा से बाहर के कुछ दार्शनिक यह सवाल उठा रहे थे कि सत्य एक होता है या अनेक। लोग यज्ञों के महत्त्व के बारे में भी चिंतन करने लगे।

2.3 वाद-विवाद और चर्चाएँ

समकालीन बौद्ध ग्रंथों में हमें 64 संप्रदायों या चिंतन परंपराओं का उल्लेख मिलता है। इससे हमें जीवंत चर्चाओं और विवादों की एक झाँकी मिलती है। शिक्षक एक जगह से दूसरी जगह घूम-घूम कर अपने दर्शन या विश्व के विषय में अपनी समझ को लेकर एक-दूसरे से तथा सामान्य लोगों से तर्क-वितर्क करते थे। ये चर्चाएँ कुटागारशालाओं (शब्दार्थ- नुकीली छत वाली झोपड़ी) या ऐसे उपवनों में होती थीं जहाँ घुमक्कड़ मनीषी ठहरा करते थे। यदि एक शिक्षक अपने प्रतिद्वंद्वी को अपने तर्कों से समझा लेता था तो वह अपने अनुयायियों के साथ उसका शिष्य बन जाता था इसलिए किसी भी संप्रदाय के लिए समर्थन समय के साथ बढ़ता-घटता रहता था।

इनमें से कई शिक्षक जिनमें महावीर और बुद्ध शामिल हैं, वेदों के प्रभुत्व पर प्रश्न उठाते थे। उन्होंने यह भी माना कि जीवन के दु:खों से मुक्ति का प्रयास हर व्यक्ति स्वयं कर सकता था। यह समझ ब्राह्मणवाद से बिलकुल भिन्न थी। जैसा कि हमने देखा ब्राह्मणवाद यह मानता था कि किसी व्यक्ति का अस्तित्व उसकी जाति और लिंग से निर्धारित होता था।

स्रोत 2

उपनिषद की कुछ पंक्तियाँ

यहाँ पर संस्कृत भाषा में रचित लगभग छठी सदी ईसा पूर्व के *छांदोग्य उपनिषद* से दो श्लोक दिए गए हैं :

आत्मा की प्रकृति

मेरी यह आत्मा धान या यव या सरसों या बाजरे के बीज की गिरी से भी छोटी है। मन के अंदर छुपी मेरी यह आत्मा पृथ्वी से भी विशाल, क्षितिज से भी विस्तृत, स्वर्ग से भी बड़ी है और इन सभी लोकों से भी बड़ी है।

सच्चा यज्ञ

यह (पवन) जो बह रहा है, निश्चय ही एक यज्ञ है... बहते-बहते यह सबको पवित्र करता है; इसलिए यह वास्तव में यज्ञ है।

बौद्ध ग्रंथ किस प्रकार तैयार और संरक्षित किए जाते थे

बुद्ध (अन्य शिक्षकों की तरह) चर्चा और बातचीत करते हुए मौखिक शिक्षा देते थे। महिलाएँ और पुरुष (शायद बच्चे भी) इन प्रवचनों को सुनते थे और इन पर चर्चा करते थे। बुद्ध के किसी भी संभाषण को उनके जीवन काल में लिखा नहीं गया। उनकी मृत्यु के बाद (पाँचवीं-चौथी सदी ई.पू.) उनके शिष्यों ने 'ज्येष्ठों' या ज़्यादा वरिष्ठ श्रमणों की एक सभा वेसली (बिहार स्थित वैशाली का पालि भाषा में रूप) में बुलाई। वहाँ पर ही उनकी शिक्षाओं का संकलन किया गया। इन संग्रहों को *'त्रिपिटक'* (शब्दार्थ भिन्न प्रकार के ग्रंथों को रखने के लिए *'तीन टोकरियाँ'*) कहा जाता था। पहले उन्हें मौखिक रूप से ही संप्रेषित किया जाता था। बाद में लिखकर विषय और लंबाई के अनुसार वर्गीकरण किया गया।

विनय पिटक में संघ या बौद्ध मठों में रहने वाले लोगों के लिए नियमों का संग्रह था। बुद्ध की शिक्षाएँ *सुत्त पिटक* में रखी गईं और दर्शन से जुड़े विषय *अभिधम्म पिटक* में आए। हर पिटक के अंदर कई ग्रंथ होते थे। बाद के युगों में बौद्ध विद्वानों ने इन ग्रंथों पर टीकाएँ लिखीं।

जब बौद्ध धर्म श्रीलंका जैसे नए इलाकों में फैला *दीपवंश* (द्वीप का इतिहास) और *महावंश* (महान इतिहास) जैसे क्षेत्र-विशेष के बौद्ध इतिहास को लिखा गया। इनमें से कई रचनाओं में बुद्ध की जीवनी लिखी गई है। ज़्यादातर पुराने ग्रंथ पालि में हैं। बाद के युगों में संस्कृत में ग्रंथ लिखे गए।

जब बौद्ध धर्म पूर्व एशिया में फैला तब फा-शिएन और श्वैन त्सांग जैसे तीर्थयात्री बौद्ध ग्रंथों की खोज में चीन से भारत आए। ये पुस्तकें वे अपने देश ले गए जहाँ विद्वानों ने इनका अनुवाद किया। हिन्दुस्तान के बौद्ध शिक्षक भी दूर-दराज़ के देशों में गए। बुद्ध की शिक्षाओं का प्रसार करने के लिए वे कई पुस्तकें भी अपने साथ ले गए। कई सदियों तक ये पांडुलिपियाँ एशिया के भिन्न-भिन्न इलाकों में स्थित बौद्ध विहारों में संरक्षित थीं। पालि, संस्कृत, चीनी और तिब्बती भाषाओं में लिखे इन ग्रंथों से आधुनिक अनुवाद तैयार किए गए हैं।

चित्र 4.4
संस्कृत में लिखी एक बौद्ध पांडुलिपि, लगभग 12वीं शताब्दी

स्रोत 3

नियतिवादी और भौतिकवादी

यहाँ हम *सुत्त पिटक* से लिया गया दृष्टांत दे रहे हैं। इसमें मगध के राजा अजातसत्तु और बुद्ध के बीच बातचीत का वर्णन किया गया है।

एक बार राजा अजातसत्तु बुद्ध के पास गए और उन्होंने मक्खलि गोसाल नामक एक अन्य शिक्षक की बातें बताईं :

"हालाँकि बुद्धिमान लोग यह विश्वास करते हैं कि इस सद्गुण से... इस तपस्या से मैं कर्म प्राप्ति करूँगा... मूर्ख उन्हीं कार्यों को करके धीरे-धीरे कर्म मुक्ति की उम्मीद करेगा। दोनों में से कोई कुछ नहीं कर सकता। सुख और दुख मानो पूर्व निर्धारित मात्रा में माप कर दिए गए हैं। इसे संसार में बदला नहीं जा सकता। इसे बढ़ाया या घटाया नहीं जा सकता। जैसे धागे का गोला फेंक देने पर लुढ़कते-लुढ़कते अपनी पूरी लंबाई तक खुलता जाता है उसी तरह मूर्ख और विद्वान दोनों ही पूर्व निर्धारित रास्ते से होते हुए दु:खों का निदान करेंगे।"

और अजीत केसकंबलिन् नामक दार्शनिक ने यह उपदेश दिया :

"हे राजन्! दान, यज्ञ या चढ़ावा जैसी कोई चीज़ नहीं होती... इस दुनिया या दूसरी दुनिया जैसी कोई चीज़ नहीं होती...

मनुष्य चार तत्वों से बना होता है। जब वह मरता है तब मिट्टी वाला अंश पृथ्वी में, जल वाला हिस्सा जल में, गर्मी वाला अंश आग में, साँस का अंश वायु में वापिस मिल जाता है और उसकी इंद्रियाँ अंतरिक्ष का हिस्सा बन जाती हैं...

दान देने की बात मूर्खों का सिद्धांत है, खोखला झूठ है... मूर्ख हो या विद्वान दोनों ही कट कर नष्ट हो जाते हैं। मृत्यु के बाद कोई नहीं बचता।"

प्रथम गद्यांश के उपदेशक आजीविक परंपरा के थे। उन्हें अक्सर नियतिवादी कहा जाता है-ऐसे लोग जो विश्वास करते थे कि सब कुछ पूर्व निर्धारित है। द्वितीय गद्यांश के उपदेशक लोकायत परंपरा के थे जिन्हें सामान्यत: भौतिकवादी कहा जाता है। इन दार्शनिक परंपराओं के ग्रंथ नष्ट हो गए हैं। इसलिए हमें अन्य परंपराओं से ही उनके बारे में जानकारी मिलती है।

➲ क्या इन लोगों को नियतिवादी या भौतिकवादी कहना आपको उचित लगता है?

➲ चर्चा कीजिए...

जब लिखित सामग्री उपलब्ध न हो अथवा किन्हीं वजहों से बच न पाई हो तो ऐसी स्थिति में विचारों और मान्यताओं के इतिहास का पुनर्निर्माण करने में क्या समस्याएँ सामने आती हैं?

चित्र 4.5
मथुरा से प्राप्त तीर्थंकर की एक मूर्ति, लगभग तीसरी शताब्दी ई.

3. लौकिक सुखों से आगे

महावीर का संदेश

जैनों के मूल सिद्धांत छठी सदी ईसा पूर्व में वर्धमान महावीर के जन्म से पहले ही उत्तर भारत में प्रचलित थे। जैन परंपरा के अनुसार महावीर से पहले 23 शिक्षक हो चुके थे, उन्हें तीर्थंकर कहा जाता है : यानी कि वे महापुरुष जो पुरुषों और महिलाओं को जीवन की नदी के पार पहुँचाते हैं।

जैन दर्शन की सबसे महत्वपूर्ण अवधारणा यह है कि संपूर्ण विश्व प्राणवान है। यह माना जाता है कि पत्थर, चट्टान और जल में भी जीवन होता है। जीवों के प्रति अहिंसा – खासकर इनसानों, जानवरों, पेड़-पौधों और कीड़े-मकोड़ों को न मारना जैन दर्शन का केंद्र बिंदु है। वस्तुत: जैन अहिंसा के सिद्धांत ने संपूर्ण भारतीय चिंतन परंपरा को प्रभावित किया है। जैन मान्यता के अनुसार जन्म और पुनर्जन्म का चक्र कर्म के द्वारा निर्धारित होता है। कर्म के चक्र से मुक्ति के लिए त्याग और तपस्या की ज़रूरत होती है। यह संसार के त्याग से ही संभव हो पाता है। इसीलिए मुक्ति के लिए विहारों में निवास करना एक अनिवार्य नियम बन गया। जैन साधु और साध्वी पाँच व्रत करते थे : हत्या न करना, चोरी नहीं करना, झूठ न बोलना, ब्रह्मचर्य (अमृषा) और धन संग्रह न करना।

स्रोत 4

महल के बाहर की दुनिया

जैसे बुद्ध के उपदेशों को उनके शिष्यों ने संकलित किया वैसे ही महावीर के शिष्यों ने किया। अक्सर ये उपदेश कहानियों के रूप में प्रस्तुत किए जाते थे जो आम लोगों को आकर्षित करते थे। यह उदाहरण *उत्तराध्ययन सूत्र* नामक एक ग्रंथ से लिया गया है। इसमें कमलावती नामक एक महारानी अपने पति को संन्यास लेने के लिए समझा रही है :

अगर संपूर्ण विश्व और वहाँ के सभी खज़ाने तुम्हारे हो जाएँ तब भी तुम्हें संतोष नहीं होगा, न ही यह सारा कुछ तुम्हें बचा पाएगा। हे राजन्! जब तुम्हारी मृत्यु होगी और जब सारा धन पीछे छूट जाएगा तब सिर्फ धर्म ही, और कुछ भी नहीं, तुम्हारी रक्षा करेगा। जैसे एक चिड़िया पिंजरे से नफ़रत करती है वैसे ही मैं इस संसार से नफ़रत करती हूँ। मैं बाल-बच्चे को जन्म न देकर निष्काम भाव से, बिना लाभ की कामना से और बिना द्वेष के एक साध्वी की तरह जीवन बिताऊँगी...

जिन लोगों ने सुख का उपभोग करके उसे त्याग दिया है, वायु की तरह भ्रमण करते हैं, जहाँ मन करे स्वतंत्र उड़ते हुए पक्षियों की तरह जाते हैं...

इस विशाल राज्य का परित्याग करो... इंद्रिय सुखों से नाता तोड़ो, निष्काम अपरिग्रही बनो, तत्पश्चात तेजमय हो घोर तपस्या करो...

➲ महारानी के द्वारा दिया गया कौन सा तर्क आपको सबसे ज़्यादा युक्तियुक्त लगता है?

3.1 जैन धर्म का विस्तार

धीरे-धीरे जैन धर्म भारत के कई हिस्सों में फैल गया। बौद्धों की तरह ही जैन विद्वानों ने प्राकृत, संस्कृत, तमिल जैसी अनेक भाषाओं में काफ़ी साहित्य का सृजन किया। सैकड़ों वर्षों से इन ग्रंथों की पांडुलिपियाँ मंदिरों से जुड़े पुस्तकालयों में संरक्षित हैं।

धार्मिक परंपराओं से जुड़ी हुई सबसे प्राचीन मूर्तियों में जैन तीर्थंकरों के उपासकों द्वारा बनवाई गई मूर्तियाँ भारतीय उपमहाद्वीप के कई हिस्सों में पाई गई हैं।

➲ चर्चा कीजिए...

क्या बीसवीं सदी में अहिंसा की कोई प्रासंगिकता है?

चित्र 4.6

चौदहवीं सदी के जैन ग्रंथ की पांडुलिपि का एक पन्ना

➲ क्या आप इसकी लिपि को पहचान सकते हैं?

4. बुद्ध और ज्ञान की खोज

बुद्ध उस युग के सबसे प्रभावशाली शिक्षकों में से एक थे। सैकड़ों वर्षों के दौरान उनके संदेश पूरे उपमहाद्वीप में और उसके बाद मध्य एशिया होते हुए चीन, कोरिया और जापान, श्रीलंका से समुद्र पार कर म्याँमार, थाइलैंड और इंडोनेशिया तक फैले।

हम बुद्ध की शिक्षाओं के बारे में कैसे जानते हैं? इनकी पुनर्रचना का आधार था बौद्ध ग्रंथों का बहुत परिश्रम से संपादन, अनुवाद और विश्लेषण किया जाना। इतिहासकारों ने उनके जीवन के बारे में चरित लेखन से जानकारी इकट्ठी की। इनमें से कई ग्रंथ बुद्ध के जीवन काल से लगभग सौ वर्षों के बाद लिखे गए। इनमें इस महान धर्मोपदेशक की याद को बनाए रखने की कोशिश की गई थी।

इन परंपराओं के अनुसार सिद्धार्थ (बुद्ध के बचपन का नाम) शाक्य कबीले के सरदार के बेटे थे। जीवन के कटु यथार्थों से दूर उन्हें महल की चारदीवारी के अंदर सब सुखों के बीच बड़ा किया गया। एक दिन

संतचरित्र किसी संत या धार्मिक नेता की जीवनी है। संतचरित्र संत की उपलब्धियों का गुणगान करते हैं, जो तथ्यात्मक रूप से पूरी तरह सही नहीं होते। ये इसलिए महत्वपूर्ण हैं कि ये हमें उस परंपरा के अनुयायियों के विश्वासों के बारे में बताते हैं।

उन्होंने अपने रथकार को उन्हें शहर घुमाने के लिए मना लिया। बाहरी दुनिया की उनकी पहली यात्रा काफ़ी पीड़ादायक रही। एक वृद्ध व्यक्ति को, एक बीमार को और एक लाश को देखकर उन्हें गहरा सदमा पहुँचा। उसी क्षण उन्हें यह अनुभूति हुई कि मनुष्य के शरीर का क्षय और अंत निश्चित है। उन्होंने एक गृहत्याग किए संन्यासी को भी देखा उसे मानो बुढ़ापे, बीमारी और मृत्यु से कोई परेशानी नहीं थी और उसने शांति प्राप्त कर ली थी। सिद्धार्थ ने निश्चय किया कि वे भी संन्यास का रास्ता अपनाएँगे। कुछ समय के बाद महल त्याग कर वे अपने सत्य की खोज में निकल गए।

सिद्धार्थ ने साधना के कई मार्गों का अन्वेषण किया। इनमें एक था शरीर को अधिक से अधिक कष्ट देना जिसके चलते वे मरते-मरते बचे। इन अतिवादी तरीकों को त्यागकर, उन्होंने कई दिन तक ध्यान करते हुए अंततः ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद से उन्हें बुद्ध अथवा ज्ञानी व्यक्ति के नाम से जाना गया है। बाकी जीवन उन्होंने धर्म या सम्यक जीवनयापन की शिक्षा दी।

चित्र 4.7
अमरावती (गुंटूर ज़िला, आंध्र प्रदेश) में लगभग 200 ईसवी की एक मूर्ति जिसमें बुद्ध को महल से जाते हुए दिखाया गया है।

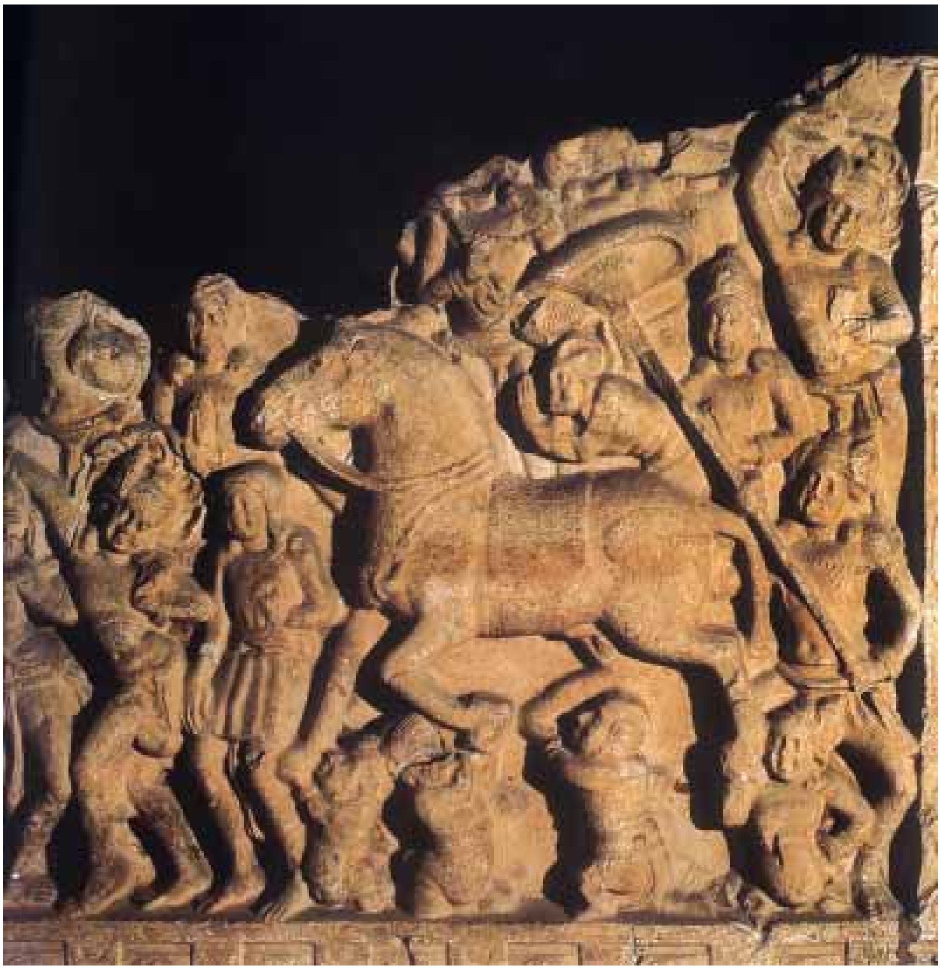

➲ चर्चा कीजिए...
यदि आप बुद्ध के जीवन के बारे में नहीं जानते तो क्या आप मूर्ति को देखकर समझ पाते कि उसमें क्या दिखाया गया है?

5. बुद्ध की शिक्षाएँ

बुद्ध की शिक्षाओं को *सुत्त पिटक* में दी गई कहानियों के आधार पर पुनर्निर्मित किया गया है। हालाँकि कुछ कहानियों में उनकी अलौकिक शक्तियों का वर्णन है, दूसरी कथाएँ दिखाती हैं कि अलौकिक शक्तियों की बजाय बुद्ध ने लोगों को विवेक और तर्क के आधार पर समझाने का प्रयास किया। उदाहरण के लिए, जब एक मरे हुए बच्चे की शोकमग्न माँ बुद्ध के पास आई तो उन्होंने बच्चे को जीवित करने के बजाय उस महिला को मृत्यु के अवश्यंभावी होने की बात समझायी। ये कथाएँ आम जनता की भाषा में रची गई थीं जिससे इन्हें आसानी से समझा जा सकता था।

बौद्ध दर्शन के अनुसार विश्व अनित्य है और लगातार बदल रहा है, यह आत्माविहीन (आत्मा) है क्योंकि यहाँ कुछ भी स्थायी या शाश्वत नहीं है। इस क्षणभंगुर दुनिया में दुख मनुष्य के जीवन का अंतर्निहित तत्व है। घोर तपस्या और विषयासक्ति के बीच मध्यम मार्ग अपनाकर मनुष्य दुनिया के दुखों से मुक्ति पा सकता है। बौद्ध धर्म की प्रारंभिक परंपराओं में भगवान का होना या न होना अप्रासंगिक था।

स्रोत 5

व्यवहार में बौद्ध धर्म

सुत्त पिटक से लिए गए इस उद्धरण में बुद्ध सिगल नाम के एक अमीर गृहपति को सलाह दे रहे हैं :

मालिक को अपने नौकरों और कर्मचारियों की पाँच तरह से देखभाल करनी चाहिए... उनकी क्षमता के अनुसार उन्हें काम देकर, उन्हें भोजन और मज़दूरी देकर, बीमार पड़ने पर उनकी परिचर्या करके, उनके साथ सुस्वादु भोजन बाँटकर और समय-समय पर उन्हें छुट्टी देकर...

कुल के लोगों को पाँच तरह से *श्रमणों* (जिन्होंने सांसारिक जीवन को त्याग दिया है) और ब्राह्मणों की देखभाल करनी चाहिए... कर्म, वचन और मन से अनुराग द्वारा, उनके स्वागत में हमेशा घर खुले रखकर और उनकी दिन-प्रतिदिन की ज़रूरतों की पूर्ति करके।

सिगल को माता-पिता, शिक्षक और पत्नी के साथ व्यवहार के लिए भी ऐसे ही उपदेश दिए गए हैं।

➲ आप सुझाव दीजिए कि माता-पिता, शिक्षकों और पत्नी के लिए किस तरह के निर्देश दिए गए होंगे।

➲ चर्चा कीजिए...

बुद्ध द्वारा सिगल को दी गई सलाह की तुलना असोक द्वारा उसकी प्रजा (अध्याय 2) को दी गई सलाह से कीजिए। क्या आपको कुछ समानताएँ और असमानताएँ नज़र आती हैं?

बुद्ध मानते थे कि समाज का निर्माण इनसानों ने किया था न कि ईश्वर ने। इसीलिए उन्होंने राजाओं और गृहपतियों (देखें अध्याय 2) को दयावान और आचारवान होने की सलाह दी। ऐसा माना जाता था कि व्यक्तिगत प्रयास से सामाजिक परिवेश को बदला जा सकता था।

बुद्ध ने जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति, आत्म-ज्ञान और निर्वाण के लिए व्यक्ति-केंद्रित हस्तक्षेप और सम्यक कर्म की कल्पना की। निर्वाण का मतलब था अहं और इच्छा का खत्म हो जाना जिससे गृहत्याग करने वालों के दुख के चक्र का अंत हो सकता था। बौद्ध परंपरा के अनुसार अपने शिष्यों के लिए उनका अंतिम निर्देश था, "तुम सब अपने लिए खुद ही ज्योति बनो क्योंकि तुम्हें खुद ही अपनी मुक्ति का रास्ता ढूँढ़ना है।"

6. बुद्ध के अनुयायी

धीरे-धीरे बुद्ध के शिष्यों का दल तैयार हो गया, इसलिए उन्होंने संघ की स्थापना की, ऐसे भिक्षुओं की एक संस्था जो धम्म के शिक्षक बन गए। ये श्रमण एक सादा जीवन बिताते थे। उनके पास जीवनयापन के लिए अत्यावश्यक चीज़ों के अलावा कुछ नहीं होता था। जैसे कि दिन में एक बार उपासकों से भोजन दान पाने के लिए वे एक कटोरा रखते थे। चूँकि वे दान पर निर्भर थे इसलिए उन्हें भिक्खु कहा जाता था।

शुरू-शुरू में सिर्फ़ पुरुष ही संघ में सम्मिलित हो सकते थे। बाद में महिलाओं को भी अनुमति मिली। बौद्ध ग्रंथों के अनुसार बुद्ध के प्रिय शिष्य आनंद ने बुद्ध को समझाकर महिलाओं के संघ में आने की अनुमति प्राप्त की। बुद्ध की उपमाता महाप्रजापति गोतमी संघ में आने वाली पहली भिक्खुनी बनीं। कई स्त्रियाँ जो संघ में आईं, वे धम्म की उपदेशिकाएँ बन गईं। आगे चलकर वे *थेरी* बनी जिसका मतलब है ऐसी महिलाएँ जिन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया हो।

बुद्ध के अनुयायी कई सामाजिक वर्गों से आए। इनमें राजा, धनवान, गृहपति और सामान्य जन कर्मकार, दास, शिल्पी, सभी शामिल थे। एक बार संघ में आ जाने पर सभी को बराबर माना जाता था क्योंकि भिक्खु और भिक्खुनी बनने पर उन्हें अपनी पुरानी पहचान को त्याग देना पड़ता था। संघ की संचालन पद्धति गणों और संघों की परंपरा पर आधारित थी। इसके तहत लोग बातचीत के माध्यम से एकमत होने की कोशिश करते थे। अगर यह संभव नहीं होता था तो मतदान द्वारा निर्णय लिया जाता था।

स्रोत 6

थेरीगाथा

यह अनूठा बौद्ध ग्रंथ *सुत्त पिटक* का हिस्सा है। इसमें भिक्खुनियों द्वारा रचित छंदों का संकलन किया गया है। इससे महिलाओं के सामाजिक और आध्यात्मिक अनुभवों के बारे में अंतर्दृष्टि मिलती है। पुन्ना नाम की एक दासी अपने मालिक के घर के लिए प्रतिदिन सुबह नदी का पानी लाने जाती थी। वहाँ वह हर दिन एक ब्राह्मण को स्नान कर्म करते हुए देखती थी। एक दिन उसने ब्राह्मण से बात की। निम्नलिखित पद्य की रचना पुन्ना ने की थी जिसमें ब्राह्मण से उसकी बातचीत का वर्णन है :

मैं जल ले जाने वाली हूँ :
कितनी भी ठंड हो
मुझे पानी में उतरना ही है
सज़ा के डर से
या ऊँचे घरानों की स्त्रियों के कटु वाक्यों के डर से।
हे ब्राह्मण तुम्हें किसका डर है,
जिससे तुम जल में उतरते हो
(जबकि) तुम्हारे अंग ठंड से काँप रहे हैं?

ब्राह्मण बोले :
मैं बुराई को रोकने के लिए अच्छाई कर रहा हूँ;
बूढ़ा या बच्चा
जिसने भी कुछ बुरा किया हो
जल में स्नान करके मुक्त हो जाता है।

पुन्ना ने कहा :
यह किसने कहा है
कि पानी में नहाने से बुराई से मुक्ति मिलती है?...
वैसा हो तो सारे मेंढक और कछुए स्वर्ग जाएँगे
साथ में पानी के साँप और मगरमच्छ भी!
इसके बदले में वे कर्म न करें
जिनका डर
आपको पानी की ओर खींचता है।
हे ब्राह्मण, अब तो रुक जाओ!
अपने शरीर को ठंड से बचाओ...

➲ बुद्ध की कौन-सी शिक्षाएँ इस रचना में नज़र आती हैं?

चित्र 4.8
जल ले जाने वाली एक स्त्री, मथुरा, लगभग तीसरी शताब्दी ई.

स्रोत 7

भिक्षुओं और भिक्खुनियों के लिए नियम

ये नियम *विनय पिटक* में मिलते हैं :

जब कोई भिक्खु एक नया कंबल या गलीचा बनाएगा तो उसे इसका प्रयोग कम से कम छः वर्षों तक करना पड़ेगा। यदि छः वर्ष से कम अवधि में वह बिना भिक्खुओं की अनुमति के एक नया कंबल या गलीचा बनवाता है तो चाहे उसने अपने पुराने कंबल/गलीचे को छोड़ दिया हो या नहीं – नया कंबल या गलीचा उससे ले लिया जाएगा और इसके लिए उसे अपराध स्वीकरण करना होगा।

यदि कोई भिक्खु किसी गृहस्थ के घर जाता है और उसे टिकिया या पके अनाज का भोजन दिया जाता है तो यदि उसे इच्छा हो तो वह दो से तीन कटोरा भर ही स्वीकार कर सकता है। यदि वह इससे ज़्यादा स्वीकार करता है तो उसे अपना 'अपराध' स्वीकार करना होगा। दो या तीन कटोरे पकवान स्वीकार करने के बाद उसे इन्हें अन्य भिक्खुओं के साथ बाँटना होगा। यही सम्यक आचरण है।

यदि कोई भिक्खु जो संघ के किसी विहार में ठहरा हुआ है, प्रस्थान के पहले अपने द्वारा बिछाए गए या बिछवाए गए बिस्तरे को न ही समेटता है, न ही समेटवाता है, या यदि वह बिना विदाई लिए चला जाता है तो उसे अपराध स्वीकरण करना होगा।

➲ क्या आप बता सकते हैं कि ये नियम क्यों बने?

बुद्ध के जीवनकाल में और उनकी मृत्यु के बाद भी बौद्ध धर्म तेज़ी से फैला। इसका कारण यह था कि लोग समकालीन धार्मिक प्रथाओं से असंतुष्ट थे और उस युग में तेज़ी से हो रहे सामाजिक बदलावों ने उन्हें उलझनों में बाँध रखा था। बौद्ध शिक्षाओं में जन्म के आधार पर श्रेष्ठता की बजाय जिस तरह अच्छे आचरण और मूल्यों को महत्त्व दिया गया उससे महिलाएँ और पुरुष इस धर्म की तरफ़ आकर्षित हुए। खुद से छोटे और कमज़ोर लोगों की तरफ़ मित्रता और करुणा के भाव को महत्त्व देने के आदर्श काफ़ी लोगों को भाए।

➲ चर्चा कीजिए...

पुन्ना जैसी दासी संघ में क्यों जाना चाहती थी?

7. स्तूप

हमने देखा कि बौद्ध आदर्श और व्यवहार ब्राह्मण, जैन तथा कई अन्य परंपराओं के साथ संवाद और तर्क-वितर्क की प्रक्रिया से उभरे। इनमें से कई परंपराओं के विचार और आचार ग्रंथों में नहीं लिखे गए। इस तरह के मेलजोल को हम पवित्र स्थलों के उभरने की प्रक्रिया को देखकर भी समझ सकते हैं।

बहुत प्राचीन काल से ही लोग कुछ जगहों को पवित्र मानते थे। अक्सर जहाँ खास वनस्पति होती थी, अनूठी चट्टानें थीं या विस्मयकारी प्राकृतिक सौंदर्य था, वहाँ पवित्र स्थल बन जाते थे। ऐसे कुछ स्थलों पर एक छोटी-सी वेदी भी बनी रहती थीं जिन्हें कभी-कभी चैत्य कहा जाता था।

शवदाह के बाद शरीर के कुछ अवशेष टीलों पर सुरक्षित रख दिए जाते थे। अंतिम संस्कार से जुड़े ये टीले चैत्य के रूप में जाने गए।

बौद्ध साहित्य में कई चैत्यों की चर्चा है। इसमें बुद्ध के जीवन से जुड़ी जगहों का भी वर्णन है–जहाँ वे जन्मे थे (लुम्बिनी), जहाँ उन्होंने

ज्ञान प्राप्त किया (बोधगया), जहाँ उन्होंने प्रथम उपदेश दिया (सारनाथ) और जहाँ उन्होंने निब्बान प्राप्त किया (कुशीनगर)। धीरे-धीरे ये सारी जगहें पवित्र स्थल बन गईं। हमें यह मालूम है कि बुद्ध के समय से लगभग दो सौ वर्षों बाद असोक ने लुम्बिनी की अपनी यात्रा की याद में एक स्तंभ बनवाया।

7.1 स्तूप क्यों बनाए जाते थे?

ऐसी कई अन्य जगहें थीं जिन्हें पवित्र माना जाता था। इन जगहों पर बुद्ध से जुड़े कुछ अवशेष जैसे उनकी अस्थियाँ या उनके द्वारा प्रयुक्त सामान गाड़ दिए गए थे। इन टीलों को स्तूप कहते थे।

स्तूप बनाने की परंपरा बुद्ध से पहले की रही होगी, लेकिन वह बौद्ध धर्म से जुड़ गई। चूँकि उनमें ऐसे अवशेष रहते थे जिन्हें पवित्र समझा जाता था, इसलिए समूचे स्तूप को ही बुद्ध और बौद्ध धर्म के प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठा मिली। *अशोकावदान* नामक एक बौद्ध ग्रंथ के अनुसार असोक ने बुद्ध के अवशेषों के हिस्से हर महत्वपूर्ण शहर में बाँट कर उनके ऊपर स्तूप बनाने का आदेश दिया। ईसा पूर्व दूसरी सदी तक भरहुत, साँची और सारनाथ जैसी जगहों पर (मानचित्र 1) स्तूप बनाए जा चुके थे।

स्रोत 8

स्तूप क्यों बनाए जाते थे

यह उद्धरण *महापरिनिब्बान सुत्त* से लिया गया है जो *सुत्त पिटक* का हिस्सा है :

परिनिर्वाण से पूर्व आनंद ने पूछा:

भगवान हम तथागत (बुद्ध का दूसरा नाम) के अवशेषों का क्या करेंगे?

बुद्ध ने कहा, "तथागत के अवशेषों को विशेष आदर देकर खुद *को* मत रोको। धर्मोत्साही बनो, अपनी भलाई के लिए प्रयास करो।"

लेकिन विशेष आग्रह करने पर बुद्ध बोले :

"उन्हें तथागत के लिए चार महापथों के चौक पर *थूप* (स्तूप का पालि रूप) बनाना चाहिए। जो भी वहाँ धूप या माला चढ़ाएगा... या वहाँ सिर नवाएगा, या वहाँ पर हृदय में शांति लाएगा, उन सबके लिए वह चिर काल तक सुख और आनंद का कारण बनेगा।"

➲ चित्र 4.15 को देखकर क्या आप इनमें से कुछ रीति-रिवाज़ों को पहचान सकते हैं?

7.2 स्तूप कैसे बनाए गए

स्तूपों की वेदिकाओं और स्तंभों पर मिले अभिलेखों से इन्हें बनाने और सजाने के लिए दिए गए दान का पता चलता है। कुछ दान राजाओं के द्वारा दिए गए थे (जैसे सातवाहन वंश के राजा), तो कुछ दान शिल्पकारों और व्यापारियों की श्रेणियों द्वारा दिए गए। उदाहरण के लिए, साँची के एक तोरणद्वार का हिस्सा हाथी दाँत का काम करने वाले शिल्पकारों के दान से बनाया गया था। सैकड़ों महिलाओं और पुरुषों ने दान के अभिलेखों में अपना नाम बताया है। कभी-कभी वे अपने गाँव या शहर का नाम बताते हैं और कभी-कभी अपना पेशा और रिश्तेदारों के नाम भी बताते हैं। इन इमारतों को बनाने में भिक्खुओं और भिक्खुनियों ने भी दान दिया।

7.3 स्तूप की संरचना

स्तूप (संस्कृत अर्थ टीला) का जन्म एक गोलार्ध लिए हुए मिट्टी के टीले से हुआ जिसे बाद में *अंड* कहा गया। धीरे-धीरे इसकी संरचना ज़्यादा जटिल हो गई जिसमें कई चौकोर और गोल आकारों का संतुलन बनाया गया। *अंड* के ऊपर एक *हर्मिका* होती थी। यह छज्जे जैसा ढाँचा देवताओं के घर का प्रतीक था। *हर्मिका* से एक मस्तूल निकलता था जिसे *यष्टि* कहते थे जिस पर अक्सर एक *छत्री* लगी होती थी। टीले के

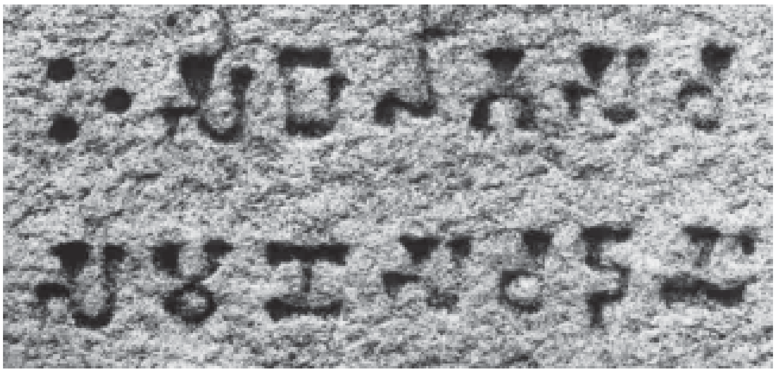

चित्र 4.9
साँची का एक दानात्मक अभिलेख
ऐसे सैकड़ों अभिलेख भरहुत और अमरावती में भी मिले हैं।

चारों ओर एक वेदिका होती थी जो पवित्र स्थल को सामान्य दुनिया से अलग करती थी।

साँची और भरहुत के प्रारंभिक स्तूप बिना अलंकरण के हैं सिवाए इसके कि उनमें पत्थर की वेदिकाएँ और तोरणद्वार हैं। ये पत्थर की वेदिकाएँ किसी बाँस के या काठ के घेरे के समान थीं और चारों दिशाओं में खड़े तोरणद्वार पर खूब नक्काशी की गई थी। उपासक पूर्वी तोरणद्वार से प्रवेश करके टीले को दाईं तरफ़ रखते हुए दक्षिणावर्त परिक्रमा करते थे, मानो वे आकाश में सूर्य के पथ का अनुकरण कर रहे हों। बाद में स्तूप के टीले पर भी अलंकरण और नक्काशी की जाने लगी। अमरावती और पेशावर (पाकिस्तान) में शाह जी की ढेरी में स्तूपों में ताख और मूर्तियाँ उत्कीर्ण करने की कला के काफ़ी उदाहरण मिलते हैं।

➲ चर्चा कीजिए...

साँची के महास्तूप के मापचित्र (चित्र 4.10 क) और छायाचित्र (चित्र 4.3) में क्या समानताएँ और फ़र्क हैं?

➲ इस इमारत की कौन-सी विशेषताएँ नक्शे में सबसे ज़्यादा स्पष्ट हैं? कौन-सी विशेषताएँ ऊर्ध्वस्थ परिप्रेक्ष्य से देखने पर ज़्यादा स्पष्ट होती हैं?

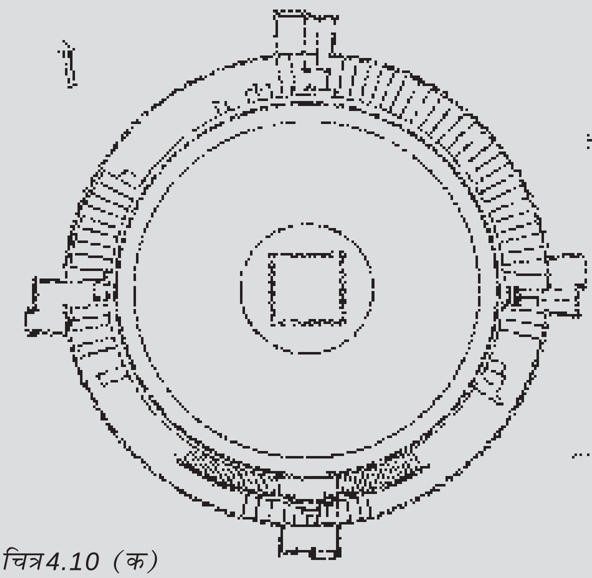

चित्र 4.10 (क)
साँची के महास्तूप की योजना
यह उस इमारत का समतलीय परिप्रेक्ष्य दिखाता है।

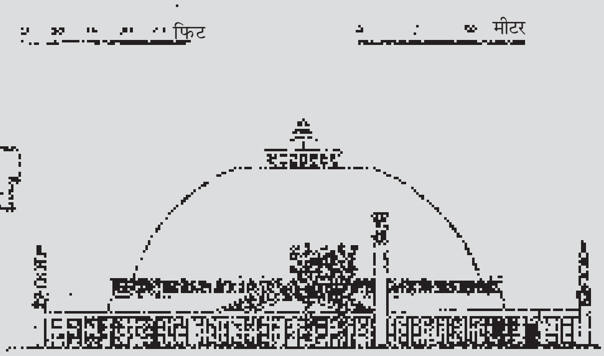

चित्र 4.10 (ख)
महास्तूप की ऊँचाई
ऊर्ध्वस्थ परिप्रेक्ष्य में

8. स्तूपों की 'खोज'

अमरावती और साँची की नियति

जैसा कि हमने देखा हर स्तूप का अपना इतिहास है। कुछ इतिहास हमें बताते हैं कि वे कैसे बने। साथ-साथ इनकी खोज का भी इतिहास है। अब हम इनकी खोज के इतिहास पर एक नज़र डालें। 1796 में एक स्थानीय राजा को जो मंदिर बनाना चाहते थे, अचानक अमरावती के स्तूप के अवशेष मिल गए। उन्होंने उसके पत्थरों के इस्तेमाल करने का निश्चय किया। उन्हें ऐसा लगा कि इस छोटी सी पहाड़ी में संभवत: कोई खज़ाना छुपा हो। कुछ वर्षों के बाद कॉलिन मेकेंज़ी नामक एक अंग्रेज़ अधिकारी इस इलाके से गुज़रे (अध्याय 7 भी देखिए)। हालाँकि उन्होंने कई मूर्तियाँ पाईं और उनका विस्तृत चित्रांकन भी किया, लेकिन उनकी रिपोर्ट कभी छपी नहीं।

चित्र 4.11
साँची का पूर्वी तोरणद्वार
सजीव मूर्तियों को देखिए।

1854 में गुंटूर (आंध्र प्रदेश) के कमिश्नर ने अमरावती की यात्रा की। उन्होंने कई मूर्तियाँ और उत्कीर्ण पत्थर जमा किए और वे उन्हें मद्रास ले गए। (इन्हें उनके नाम पर एलियट संगमरमर के नाम से जाना जाता है)। उन्होंने पश्चिमी तोरणद्वार को भी खोज निकाला और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अमरावती का स्तूप बौद्धों का सबसे विशाल और शानदार स्तूप था। 1850 के दशक में अमरावती के उत्कीर्ण पत्थर अलग-अलग जगहों पर ले जाए जा रहे थे। कुछ पत्थर कलकत्ता में एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल पहुँचे, तो कुछ मद्रास में इंडिया ऑफिस। कुछ पत्थर लंदन तक पहुँच गए। कई अंग्रेज़ अधिकारियों के बागों में अमरावती की मूर्तियाँ पाना कोई असामान्य बात नहीं थी। वस्तुत: इस इलाके का हर नया अधिकारी यह कहकर कुछ मूर्तियाँ उठा ले जाता था कि उसके पहले के अधिकारियों ने भी ऐसा किया।

पुरातत्ववेत्ता एच.एच. कोल उन मुट्ठी भर लोगों में एक थे जो अलग सोचते थे। उन्होंने लिखा "इस देश की प्राचीन कलाकृतियों की लूट होने देना मुझे आत्मघाती और असमर्थनीय नीति लगती है।" वे मानते थे कि संग्रहालयों में मूर्तियों की प्लास्टर प्रतिकृतियाँ रखी जानी चाहिए जबकि असली कृतियाँ खोज की जगह पर ही

रखी जानी चाहिए। दुर्भाग्य से कोल अधिकारियों को अमरावती पर इस बात के लिए राज़ी नहीं कर पाए। लेकिन खोज की जगह पर ही संरक्षण की बात को साँची के लिए मान लिया गया।

साँची क्यों बच गया जबकि अमरावती नष्ट हो गया? शायद अमरावती की खोज थोड़ी पहले हो गई थी। तब तक विद्वान इस बात के महत्त्व को नहीं समझ पाए थे कि किसी पुरातात्विक अवशेष को उठाकर ले जाने की बजाय खोज की जगह पर ही संरक्षित करना कितना महत्वपूर्ण था। 1818 में जब साँची की खोज हुई, इसके तीन तोरणद्वार तब भी खड़े थे। चौथा वहीं पर गिरा हुआ था और टीला भी अच्छी हालत में था। तब भी यह सुझाव आया कि तोरणद्वारों को पेरिस या लंदन भेज दिया जाए। अंतत: कई कारणों से साँची का स्तूप वहीं बना रहा और आज भी बना हुआ है जबकि अमरावती का महाचैत्य अब सिर्फ एक छोटा सा टीला है जिसका सारा गौरव नष्ट हो चुका है।

➲ चर्चा कीजिए...

खंड एक को दुबारा पढ़िए। कारण बताइए कि साँची क्यों बच गया।

9. मूर्तिकला

हमने अभी-अभी पढ़ा है कि किस तरह से स्तूपों से मूर्तियों को यूरोप ले जाया गया। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि जिन लोगों ने मूर्तियों को देखा उन्हें ये ख़ूबसूरत और मूल्यवान लगीं। इसलिए वे उन्हें अपने लिए रखना चाहते थे। आइए, हम इन मूर्तियों को ध्यान से देखें।

9.1 पत्थर में गढ़ी कथाएँ

आपने ऐसे घुमक्कड़ कथावाचकों को देखा होगा जो अपने साथ कपड़ों या कागज़ पर बने चित्रों (चारणचित्र) को लेकर घूमते हैं। जब वे कहानी कहते हैं तब वे इन चित्रों को दिखाते हैं।

चित्र 4.13 देखिए। पहली बार देखने पर तो इस मूर्तिकला अंश में फूस की झोंपड़ी और पेड़ों वाले ग्रामीण दृश्य का चित्रण दिखता है। परंतु वे कला इतिहासकार जिन्होंने साँची की इस मूर्तिकला का गहराई से अध्ययन किया है, इसे *वेसान्तर जातक* से लिया गया एक दृश्य बताते हैं। यह कहानी एक ऐसे दानी राजकुमार के बारे में है जिसने अपना सब कुछ एक ब्राह्मण को सौंप दिया और स्वयं अपनी पत्नी और बच्चों के

चित्र 4.12
तोरण का एक हिस्सा
क्या आपको ऐसा लगता है कि साँची के तक्षक पटचित्र को खुलते हुए दर्शाना चाह रहे थे?

चित्र 4.13
उत्तरी तोरणद्वार का एक हिस्सा

साथ जंगल में रहने चला गया। जैसा कि इस उदाहरण से स्पष्ट है अक्सर इतिहासकार किसी मूर्तिकला की व्याख्या लिखित साक्ष्यों के साथ तुलना के द्वारा करते हैं।

9.2 उपासना के प्रतीक

बौद्ध मूर्तिकला को समझने के लिए कला इतिहासकारों को बुद्ध के चरित लेखन के बारे में समझ बनानी पड़ी। बौद्धचरित लेखन के अनुसार एक वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए बुद्ध को ज्ञान प्राप्ति हुई। कई प्रारंभिक मूर्तिकारों ने बुद्ध को मानव रूप में न दिखाकर उनकी उपस्थिति प्रतीकों के माध्यम से दर्शाने का प्रयास किया। उदाहरणत:, रिक्त स्थान (चित्र 4.14) बुद्ध के ध्यान की दशा तथा स्तूप (चित्र 4.15) *महापरिनिब्बान* के प्रतीक बन गए। चक्र का भी प्रतीक के रूप में प्राय: इस्तेमाल किया गया (चित्र 4.16)। यह बुद्ध द्वारा सारनाथ में दिए गए पहले उपदेश का प्रतीक था। जैसा कि स्पष्ट है ऐसी मूर्तिकला को अक्षरश: नहीं समझा जा सकता है। उदाहरणत:, पेड़ का तात्पर्य केवल एक पेड़ नहीं था वरन्

चित्र 4.14 (नीचे दाईं ओर)
बोधि वृक्ष की पूजा
चित्र में वृक्ष, आसन और उसके चारों ओर जन-समुदाय के चित्रण पर ध्यान दीजिए।
चित्र 4.15 (नीचे मध्य में)
स्तूप की पूजा
चित्र 4.16 (नीचे बाईं ओर)
धर्मचक्र प्रवर्तन

चित्र 4.17
तोरणद्वार पर एक स्त्री

वह बुद्ध के जीवन की एक घटना का प्रतीक था। ऐसे प्रतीकों को समझने के लिए यह ज़रूरी है कि इतिहासकार कलाकृतियों के निर्माताओं की परंपराओं को जानें।

9.3 लोक परंपराएँ

साँची में उत्कीर्णित बहुत सी अन्य मूर्तियाँ शायद बौद्ध मत से सीधी जुड़ी नहीं थीं। इनमें कुछ सुंदर स्त्रियाँ भी मूर्तियों में उत्कीर्णित हैं जो तोरणद्वार के किनारे एक पेड़ पकड़ कर झूलती हुई (चित्र 4.17) दिखती हैं। शुरू-शुरू में विद्वान इस मूर्ति के महत्त्व के बारे में थोड़े असमंजस में थे। इस मूर्ति का त्याग और तपस्या से कोई रिश्ता नज़र नहीं आता था लेकिन साहित्यिक परंपराओं के अध्ययन से वे समझ पाए कि यह संस्कृत भाषा में वर्णित *शालभंजिका* की मूर्ति है। लोक परंपरा में यह माना जाता था कि इस स्त्री द्वारा छुए जाने से वृक्षों में फूल खिल उठते थे और फल होने लगते थे। ऐसा लगता है कि यह एक शुभ प्रतीक माना जाता था और इस कारण स्तूप के अलंकरण में प्रयुक्त हुआ। *शालभंजिका* की मूर्ति से पता चलता है कि जो लोग बौद्ध धर्म में आए उन्होंने बुद्ध-पूर्व और बौद्ध धर्म से इतर दूसरे विश्वासों, प्रथाओं और धारणाओं से बौद्ध धर्म को समृद्ध किया। साँची की मूर्तियों में पाए गए कई प्रतीक या चिह्न निश्चय ही इन्हीं परंपराओं से उभरे थे। उदाहरण के लिए, जानवरों के कुछ बहुत ख़ूबसूरत उत्कीर्णन यहाँ पर पाए गए हैं। इन जानवरों में हाथी, घोड़े, बंदर और गाय-बैल शामिल हैं। हालाँकि साँची में जातकों से ली गई जानवरों की कई कहानियाँ हैं, ऐसा लगता है कि यहाँ पर लोगों को आकर्षित करने के लिए जानवरों का उत्कीर्णन किया गया था। साथ ही जानवरों को मनुष्यों के गुणों के प्रतीक के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। उदाहरण के लिए, हाथी शक्ति और ज्ञान के प्रतीक माने जाते थे।

इन प्रतीकों में कमल दल और हाथियों के बीच एक

चित्र 4.18
साँची में एक हाथी

चित्र 4.19
गजलक्ष्मी

अतीत से प्राप्त चित्र

पत्थर की कलाकृतियाँ लंबे समय तक सुरक्षित बच जाती हैं। इसलिए इतिहासकारों को यह आसानी से उपलब्ध हो जाता है। लेकिन अतीत में चित्रकारी जैसे संप्रेषण के दूसरे माध्यम भी इस्तेमाल किए जाते थे। उनमें जो सबसे अच्छी हालत में बचे हुए हैं वे गुफाओं की दीवारों पर बने चित्र हैं। इनमें अजंता (महाराष्ट्र) की चित्रकारी काफ़ी प्रसिद्ध है।

अजंता के चित्र जातकों की कथाएँ दिखाते हैं। इनमें राज दरबार का जीवन, शोभा यात्राएँ, काम करते हुए स्त्री-पुरुष और त्यौहार मनाने के चित्र दिखाए गए हैं। कलाकारों ने त्रिविम रूप देने के लिए आभाभेद तकनीक का प्रयोग किया। कुछ चित्र बिल्कुल स्वाभाविक और सजीव लगते हैं।

चित्र 4.20
अजंता से एक चित्र
बैठे हुए व्यक्ति और उनके सेवकों पर ग़ौर कीजिए।

चित्र 4.21
साँची में सर्प

महिला की मूर्ति प्रमुख है (चित्र 4.19)। ये हाथी उनके ऊपर जल छिड़क रहे हैं जैसे वे उनका अभिषेक कर रहे हों। जहाँ कुछ इतिहासकार उन्हें बुद्ध की माँ माया से जोड़ते हैं तो दूसरे इतिहासकार उन्हें एक लोकप्रिय देवी गजलक्ष्मी मानते हैं। गजलक्ष्मी सौभाग्य लाने वाली देवी थीं जिन्हें प्राय: हाथियों के साथ जोड़ा जाता है। यह भी संभव

है कि इन उत्कीर्णित मूर्तियों को देखने वाले उपासक इसे माया और गजलक्ष्मी दोनों से जोड़ते थे।

कई स्तंभों पर दिखाए गए सर्पों को भी देखिए (चित्र 4.21)। यह प्रतीक भी ऐसी लोक परंपराओं से लिया गया प्रतीत होता है जिनका ग्रंथों में हमेशा ज़िक्र नहीं होता था। दिलचस्प बात यह है कि कला पर लिखने वाले आधुनिक इतिहासकारों में एक शुरुआती इतिहासकार जेम्स फर्गुसन ने साँची को वृक्ष और सर्प पूजा का केंद्र माना था। वे बौद्ध साहित्य से अनभिज्ञ थे। तब तक ज़्यादातर बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद नहीं हुआ था। इसलिए उन्होंने सिर्फ़ उत्कीर्णित मूर्तियों का अध्ययन करके अपने निष्कर्ष निकाले थे।

➲ चर्चा कीजिए...

मूर्तिकला के लिए हड्डियों, मिट्टी और धातुओं का भी इस्तेमाल होता है। इनके विषय में पता कीजिए।

10. नयी धार्मिक परंपराएँ

10.1 महायान बौद्ध मत का विकास

ईसा की प्रथम सदी के बाद बौद्ध अवधारणाओं और व्यवहार में बदलाव नज़र आते हैं। प्रारंभिक बौद्ध मत में निब्बान के लिए व्यक्तिगत प्रयास को विशेष महत्त्व दिया गया था। बुद्ध को भी एक मनुष्य समझा जाता था जिन्होंने व्यक्तिगत प्रयास से प्रबोधन और निब्बान प्राप्त किया। परंतु धीरे-धीरे एक मुक्तिदाता की कल्पना उभरने लगी। यह विश्वास किया जाने लगा कि वे मुक्ति दिलवा सकते थे। साथ-साथ बोधिसत्त की अवधारणा भी उभरने लगी। बोधिसत्तों को परम करुणामय जीव माना गया जो अपने सत्कार्यों से पुण्य कमाते थे। लेकिन वे इस पुण्य का प्रयोग दुनिया को दुखों में छोड़ देने के लिए और निब्बान प्राप्ति के लिए नहीं करते थे। बल्कि वे इससे दूसरों की सहायता करते थे। बुद्ध और बोधिसत्तों की मूर्तियों की पूजा इस परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग बन गई।

चिंतन की इस नयी परंपरा को महायान के नाम से जाना गया। जिन लोगों ने इन विश्वासों को अपनाया उन्होंने पुरानी परंपरा को हीनयान नाम से संबोधित किया।

चित्र 4.22
पहली सदी की बुद्ध मूर्ति, मथुरा

हीनयान या थेरवाद?

महायान के अनुयायी दूसरी बौद्ध परंपराओं के समर्थकों को हीनयान के अनुयायी कहते थे। लेकिन, पुरातन परंपरा के अनुयायी खुद को थेरवादी कहते थे। इसका मतलब है वे लोग जिन्होंने पुराने, प्रतिष्ठित शिक्षकों (जिन्हें थेर कहते थे) के बताए रास्ते पर चलने वाले।

10.2 पौराणिक हिंदू धर्म का उदय

मुक्तिदाता की कल्पना सिर्फ बौद्ध धर्म तक सीमित नहीं थी। हम पाते हैं कि इसी तरह के विश्वास एक अलग ढंग से उन परंपराओं में भी विकसित हो रहे थे जिन्हें आज हिंदू धर्म के नाम से जाना जाता है। इसमें वैष्णव (वह हिंदू परंपरा जिसमें विष्णु को सबसे महत्वपूर्ण देवता माना जाता है) और शैव (वह संकल्पना जिसमें शिव परमेश्वर है) परंपराएँ शामिल हैं। इनके अंतर्गत एक विशेष देवता की पूजा को खास महत्त्व दिया जाता था। इस प्रकार की आराधना में उपासना और ईश्वर के बीच का रिश्ता प्रेम और समर्पण का रिश्ता माना जाता था। इसे भक्ति कहते हैं।

चित्र 4.23
विष्णु का वराह अवतार जिसमें उन्हें पृथ्वी देवी को बचाते हुए दिखाया गया है। (लगभग छठी सदी, एहोल, कर्नाटक)

➲ मूर्ति में दी गई आकृतियों के आपसी अनुपात में फ़र्क से क्या बात समझ में आती है?

वैष्णववाद में कई अवतारों के इर्द-गिर्द पूजा पद्धतियाँ विकसित हुईं। इस परंपरा के अंदर दस अवतारों की कल्पना है। यह माना जाता था कि पापियों के बढ़ते प्रभाव के चलते जब दुनिया में अव्यवस्था और नाश की स्थिति आ जाती थी तब विश्व की रक्षा के लिए भगवान अलग-अलग रूपों में अवतार लेते थे। संभवतः अलग-अलग अवतार देश के भिन्न-भिन्न हिस्सों में लोकप्रिय थे। इन सब स्थानीय देवताओं को विष्णु का रूप मान लेना एकीकृत धार्मिक परंपरा के निर्माण का एक महत्वपूर्ण तरीका था।

कई अवतारों को मूर्तियों के रूप में दिखाया गया है। दूसरे देवताओं की भी मूर्तियाँ बनीं। शिव को उनके प्रतीक लिंग के रूप में बनाया जाता था। लेकिन उन्हें कई बार मनुष्य के रूप में भी दिखाया गया है। ये सारे चित्रण देवताओं से जुड़ी हुई मिश्रित अवधारणाओं पर आधारित थे। उनकी खूबियों और प्रतीकों को उनके शिरोवस्त्र, आभूषण, आयुधों (हथियार और हाथ में धारण किए गए अन्य शुभ अस्त्र) और बैठने की शैली से इंगित किया जाता था।

इन मूर्तियों के अंकन का मतलब समझने के लिए इतिहासकारों को इनसे जुड़ी हुई कहानियों से परिचित होना पड़ता है। कई कहानियाँ प्रथम सहस्राब्दि के मध्य से ब्राह्मणों

चित्र 4.24
महाबलीपुरम् (तमिलनाडु) में दुर्गा की एक मूर्ति (छठी सदी)

द्वारा रचित पुराणों में पाई जाती हैं। इनमें बहुत से किस्से ऐसे हैं जो सैकड़ों वर्ष पहले रचने के बाद सुने-सुनाए जाते रहे थे। इनमें देवी-देवताओं की भी कहानियाँ हैं। सामान्यत: इन्हें संस्कृत श्लोकों में लिखा गया था। इन्हें ऊँची आवाज़ में पढ़ा जाता था जिसे कोई भी सुन सकता था। महिलाएँ और शूद्र जिन्हें वैदिक साहित्य पढ़ने-सुनने की अनुमति नहीं थी, पुराणों को सुन सकते थे।

पुराणों की ज़्यादातर कहानियाँ लोगों के आपसी मेल-मिलाप से विकसित हुईं। पुजारी, व्यापारी और सामान्य स्त्री-पुरुष एक से दूसरी जगह आते-जाते हुए अपने विश्वासों और अवधारणाओं का आदान-प्रदान करते थे। उदाहरण के लिए, हम यह जानते हैं कि वासुदेव-कृष्ण मथुरा इलाके के महत्वपूर्ण देवता थे। कई शताब्दियों के दौरान उनकी पूजा देश के दूसरे इलाकों में भी फैल गई।

➲ कलाकारों ने किस प्रकार गति को दिखाने की कोशिश की है? इस मूर्ति में बताई कहानी के बारे में जानकारी इकट्ठी कीजिए।

10.3 मंदिरों का बनाया जाना

जिस समय साँची जैसी जगहों में स्तूप अपने विकसित रूप में आ गए थे उसी समय देवी-देवताओं की मूर्तियों को रखने के लिए सबसे पहले मंदिर भी बनाए गए। शुरू के मंदिर एक चौकोर कमरे के रूप में थे जिन्हें गर्भगृह कहा जाता था। इनमें एक दरवाज़ा होता था जिससे उपासक मूर्ति की पूजा करने के लिए भीतर प्रविष्ट हो सकता था। धीरे-धीरे गर्भगृह के ऊपर एक ऊँचा ढाँचा बनाया जाने लगा जिसे *शिखर* कहा

चित्र 4.25
एक मंदिर, देवगढ़ (उत्तर प्रदेश), पाँचवीं सदी

➲ गर्भगृह के प्रवेशद्वार और शिखर के अवशेषों को पहचानें।

जाता था। मंदिर की दीवारों पर अक्सर भित्ति चित्र उत्कीर्ण किए जाते थे। बाद के युगों में मंदिरों के स्थापत्य का काफ़ी विकास हुआ। अब मंदिरों के साथ विशाल सभास्थल, ऊँची दीवारें और तोरण भी जुड़ गए। जल आपूर्ति (देखिए अध्याय 7) का इंतज़ाम भी किया जाने लगा।

शुरू-शुरू के मंदिरों की एक खास बात यह थी कि इनमें से कुछ पहाड़ियों को काट कर खोखला करके कृत्रिम गुफाओं के रूप में बनाए गए थे। कृत्रिम गुफाएँ बनाने की परंपरा काफ़ी पुरानी थी (चित्र 4.27)।

चित्र 4.26
शेषनाग पर आराम करते विष्णु की मूर्ति, देवगढ़ (उत्तर प्रदेश), पाँचवीं सदी

सबसे प्राचीन कृत्रिम गुफाएँ ईसा पूर्व तीसरी सदी में असोक के आदेश से आजीविक संप्रदाय के संतों के लिए बनाई गई थीं।

यह परंपरा अलग-अलग चरणों में विकसित होती रही। इसका सबसे विकसित रूप हमें आठवीं सदी के कैलाशनाथ (शिव का एक नाम) के मंदिर में नज़र आता है जिसमें पूरी पहाड़ी काटकर उसे मंदिर का रूप दे दिया गया था।

एक ताम्रपत्र अभिलेख एलोरा के प्रमुख तक्षक द्वारा इसका निर्माण समाप्त करने के बाद उसके आश्चर्य को व्यक्त करता है "हे भगवान यह मैंने कैसे बनाया!"

चित्र 4.27
बराबर (बिहार) की गुफाएँ, लगभग तीसरी सदी ईसा पूर्व

चित्र 4.28
कैलाशनाथ मंदिर, एलोरा (महाराष्ट्र)
यह सारा ढाँचा एक चट्टान को काटकर तैयार किया गया है।

11. क्या हम सब कुछ देख-समझ सकते हैं?

अब तक आपको हमारे अतीत की समृद्ध दृश्य परंपराओं की एक झलक मिल चुकी है। ये परंपराएँ ईंट और पत्थर से निर्मित स्थापत्य कला, मूर्ति कला और चित्रकला के रूप में हमारे सामने आईं हैं। हमने पाया कि समय के बहाव में बहुत कुछ नष्ट हो गया है। लेकिन जो बचा है और संरक्षित है वह हमें इन भव्य कलाकृतियों के निर्माताओं-कलाकारों, मूर्तिकारों, राजगीरों और वास्तुकारों की दृष्टि से परिचित कराता है। लेकिन क्या हम उनके संदेश को बिना दुविधा के अपने-आप समझ सकते हैं? क्या हम कभी यह पूरी तरह से समझ पाएँगे कि जो लोग इन प्रतिकृतियों को देखते और पूजते थे उनके लिए इनका क्या महत्त्व था?

11.1 अनजाने को समझने की कोशिश

यह स्मरणीय है कि यूरोप के विद्वानों ने उन्नीसवीं सदी में जब देवी-देवताओं की मूर्तियाँ देखीं तो वे उनकी पृष्ठभूमि और महत्त्व को नहीं समझ पाए। कई सिरों, हाथों वाली या मनुष्य और जानवर के रूपों

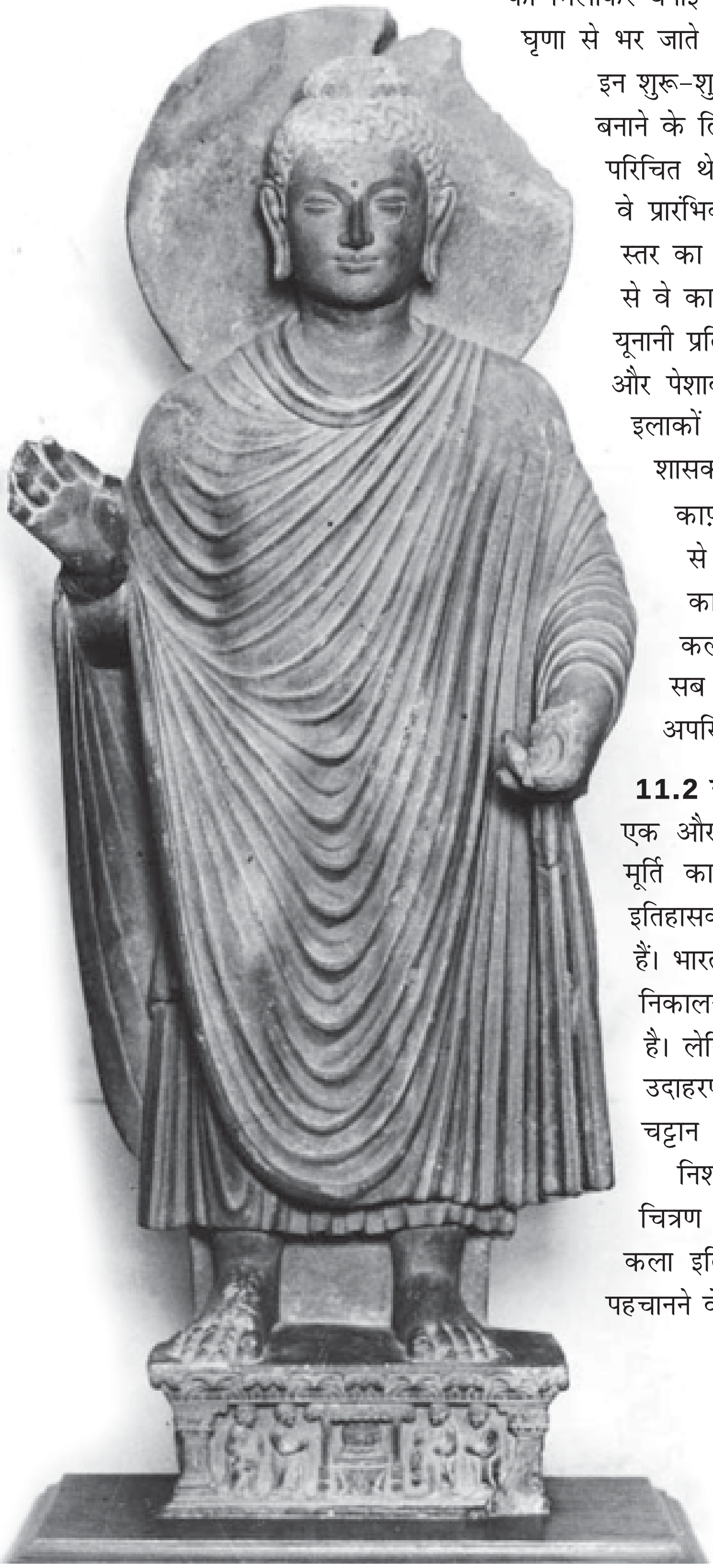

को मिलाकर बनाई गई मूर्तियाँ उन्हें विकृत लगती थीं और कई बार वे घृणा से भर जाते थे।

इन शुरू-शुरू के विद्वानों ने ऐसी अजीबोगरीब मूर्तियों की समझ बनाने के लिए उनकी तुलना एक ऐसी परंपरा से की जिससे वे परिचित थे। यह थी प्राचीन यूनान की कला परंपरा। हालाँकि वे प्रारंभिक भारतीय मूर्तिकला को यूनान की कला से निम्न स्तर का मानते थे, बुद्ध और बोधिसत्त की मूर्तियों की खोज से वे काफ़ी उत्साहित हुए। ऐसा इसलिए हुआ कि ये मूर्तियाँ यूनानी प्रतिमानों से प्रभावित थीं। ये मूर्तियाँ ज़्यादातर तक्षशिला और पेशावर जैसे उत्तर-पश्चिम के नगरों में मिली थीं। इन इलाकों में ईसा से दो सौ साल पहले भारतीय-यूनानी शासकों ने राज्य बनाए थे। ये मूर्तियाँ यूनानी मूर्तियों से काफ़ी मिलती-जुलती थीं। चूँकि ये विद्वान यूनानी परंपरा से परिचित थे, इसलिए उन्होंने इन्हें भारतीय मूर्ति कला का सर्वश्रेष्ठ नमूना माना। परिणामत: इन विद्वानों ने इस कला को समझने के लिए एक तरीका अपनाया जो हम सब अक्सर अपनाते हैं – परिचित चीज़ों के आधार पर अपरिचित चीज़ों को समझने का पैमाना तैयार करना।

11.2 यदि लिखित और दृश्य का मेल न हो...

एक और समस्या पर नज़र डालिए। हमने पाया कि किसी मूर्ति का महत्त्व और संदर्भ समझने के लिए कला के इतिहासकार अक्सर लिखित ग्रंथों से जानकारी इकट्ठी करते हैं। भारतीय मूर्तियों की यूनानी मूर्तियों से तुलना कर निष्कर्ष निकालने की अपेक्षा यह निश्चय ही ज़्यादा बेहतर तरीका है। लेकिन यह बहुत आसान नहीं। इसका सबसे दिलचस्प उदाहरण है महाबलीपुरम (तमिलनाडु) में एक विशाल चट्टान पर उत्कीर्ण मूर्तियाँ।

निश्चय ही चित्र 4.30 में किसी कथा का सजीव चित्रण किया गया है। लेकिन यह कौन-सी कथा है? कला इतिहासकारों ने पुराणों के साहित्य में इस कथा को पहचानने के लिए काफ़ी खोजबीन की है। लेकिन उनमें काफ़ी

चित्र 4.29
गांधार का एक बोधिसत्त
उनके कपड़ों और केश विन्यास पर ध्यान दीजिए।

मतभेद हैं। कुछ का मानना है कि इसमें गंगा नदी के स्वर्ग से अवतरण का चित्रण है। चट्टान की सतह के मध्य प्राकृतिक दरार शायद नदी को दिखा रही है। यह कथा महाकाव्यों और पुराणों में वर्णित है। दूसरे विद्वान मानते हैं कि यहाँ पर दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिए महाभारत में दी गई अर्जुन की तपस्या को दिखाया गया है। वे मूर्तियों के बीच एक साधु को केंद्र में रखे जाने की बात को महत्त्व देते हैं।

अंततः हमें यह याद रखना चाहिए कि बहुत से रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास और व्यवहार इमारतों, मूर्तियों या चित्रकला के द्वारा स्थायी दृश्य माध्यमों के रूप में दर्ज़ नहीं किए गए। इनमें दिन-प्रतिदिन और विशिष्ट अवसरों के रीति-रिवाज शामिल हैं। कई लोगों और समुदायों को चिरस्थायी विवरण रखने की ज़रूरत महसूस नहीं हुई हो। संभव है कि धार्मिक गतिविधियों और दार्शनिक मान्यताओं की उनकी सक्रिय परंपरा रही हो। वस्तुतः हमने इस अध्याय में जिन शानदार उदाहरणों को चुना है वे एक विशाल ज्ञान राशि की मात्र ऊपरी परत हैं।

➲ चर्चा कीजिए...

आपने कोई भी धार्मिक अनुष्ठान देखा हो तो उसका वर्णन कीजिए। क्या इसे किसी रूप में हमेशा के लिए दर्ज़ किया जाता है?

चित्र 4.30
महाबलीपुरम् की एक मूर्ति

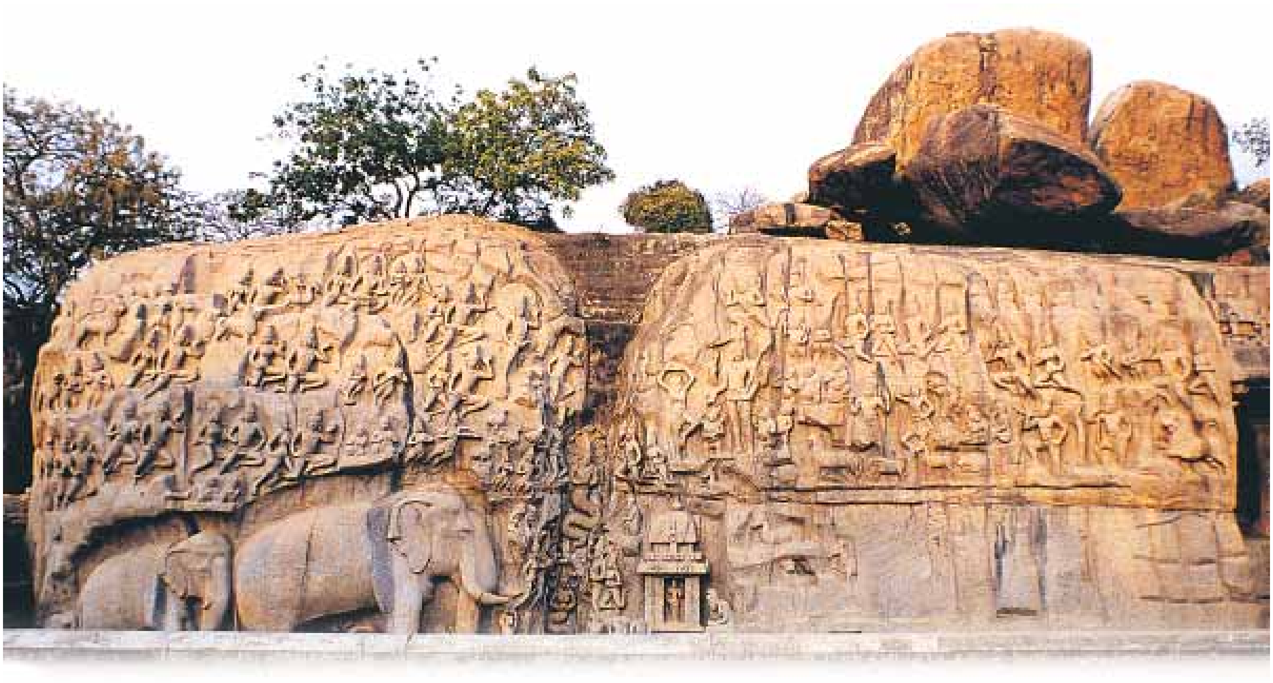

कालरेखा 1
महत्वपूर्ण धार्मिक बदलाव

लगभग 1500-1000 ई. पू.	प्रारंभिक वैदिक परंपराएँ
लगभग 1000-500 ई. पू.	उत्तर वैदिक परंपराएँ
लगभग छठी सदी ई. पू.	प्रारंभिक उपनिषद, जैन धर्म, बौद्ध धर्म
लगभग तीसरी सदी ई. पू.	आरंभिक स्तूप
लगभग दूसरी सदी ईसा पूर्व से आगे	महायान बौद्ध मत का विकास, वैष्णववाद, शैववाद और देवी पूजन परंपराएँ
लगभग तीसरी सदी ईसवी	सबसे पुराने मंदिर

कालरेखा 2
प्राचीन इमारतों और मूर्तियों की खोज और संरक्षण के महत्वपूर्ण चरण

उन्नीसवीं सदी	
1814	इंडियन म्यूज़ियम, कलकत्ता की स्थापना
1834	रामराजा लिखित *एसेज़ ऑन द आर्किटैक्चर ऑफ़ द हिंदूज़* का प्रकाशन; कनिंघम ने सारनाथ के स्तूप की छानबीन की
1835-1842	जेम्स फर्गुसन ने महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थलों का सर्वेक्षण किया
1851	गवर्नमेंट म्यूज़ियम, मद्रास की स्थापना
1854	अलेक्जैंडर कनिंघम ने *भिलसा टोप्स* लिखी जो साँची पर लिखी गई सबसे प्रारंभिक पुस्तकों में से एक है
1878	राजेंद्र लाल मित्र की पुस्तक, *बुद्ध गया : द हेरिटेज़ ऑफ़ शाक्य मुनि* का प्रकाशन
1880	एच.एच. कोल को प्राचीन इमारतों का संग्रहाध्यक्ष बनाया गया
1888	ट्रेज़र-ट्रोव एक्ट का बनाया जाना। इसके अनुसार सरकार पुरातात्विक महत्त्व की किसी भी चीज़ को हस्तगत कर सकती थी
बीसवीं सदी	
1914	जॉन मार्शल और अल्फ्रेड फूसे की द *मॉन्युमेंट्स ऑफ़ साँची* पुस्तक का प्रकाशन
1923	जॉन मार्शल की पुस्तक *कंजर्वेशन मैनुअल* का प्रकाशन
1955	प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली की नींव रखी
1989	साँची को एक विश्व कला दाय स्थान घोषित किया गया

उत्तर दीजिए (लगभग 100-150 शब्दों में)

1. क्या उपनिषदों के दार्शनिकों के विचार नियतिवादियों और भौतिकवादियों से भिन्न थे? अपने जवाब के पक्ष में तर्क दीजिए।
2. जैन धर्म की महत्वपूर्ण शिक्षाओं को संक्षेप में लिखिए।
3. साँची के स्तूप के संरक्षण में भोपाल की बेगमों की भूमिका की चर्चा कीजिए।
4. निम्नलिखित संक्षिप्त अभिलेख को पढ़िए और जवाब दीजिए :

   महाराजा हुविष्क (एक कुषाण शासक) के तैंतीसवें साल में गर्म मौसम के पहले महीने के आठवें दिन त्रिपिटक जानने वाले भिक्खु बल की शिष्या, त्रिपिटक जानने वाली बुद्धमिता के बहन की बेटी भिक्खुनी धनवती ने अपने माता-पिता के साथ मधुवनक में बोधिसत्त की मूर्ति स्थापित की।

(क) धनवती ने अपने अभिलेख की तारीख कैसे निश्चित की?

(ख) आपके अनुसार उन्होंने बोधिसत्त की मूर्ति क्यों स्थापित की?

(ग) वे अपने किन रिश्तेदारों का नाम लेती हैं?

(घ) वे कौन-से बौद्ध ग्रंथों को जानती थीं?

(ड.) उन्होंने ये पाठ किससे सीखे थे?

5. आपके अनुसार स्त्री-पुरुष संघ में क्यों जाते थे?

चित्र 4.31
साँची की एक मूर्ति

निम्नलिखित पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिए (लगभग 500 शब्दों में)

6. साँची की मूर्तिकला को समझने में बौद्ध साहित्य के ज्ञान से कहाँ तक सहायता मिलती है?

7. चित्र 4.32 और 4.33 में साँची से लिए गए दो परिदृश्य दिए गए हैं। आपको इनमें क्या नज़र आता है? वास्तुकला, पेड़-पौधे, और जानवरों को ध्यान से देखकर तथा लोगों के काम-धंधों को पहचान कर यह बताइए कि इनमें से कौन से ग्रामीण और कौन से शहरी परिदृश्य हैं?

8. वैष्णववाद और शैववाद के उदय से जुड़ी वास्तुकला और मूर्तिकला के विकास की चर्चा कीजिए।

9. स्तूप क्यों और कैसे बनाए जाते थे? चर्चा कीजिए।

चित्र 4.33

चित्र 4.32

मानचित्र कार्य

10. विश्व के रेखांकित मानचित्र पर उन इलाकों पर निशान लगाइए जहाँ बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ। उपमहाद्वीप से इन इलाकों को जोड़ने वाले जल और स्थल मार्गों को दिखाइए।

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. इस अध्याय में चर्चित धार्मिक परंपराओं में से क्या कोई परंपरा आपके अड़ोस-पड़ोस में मानी जाती है? आज किन धार्मिक ग्रंथों का प्रयोग किया जाता है? उन्हें कैसे संरक्षित और संप्रेषित किया जाता है? क्या पूजा में मूर्तियों का प्रयोग होता है? यदि हाँ तो क्या ये मूर्तियाँ इस अध्याय में लिखी गई मूर्तियों से मिलती-जुलती हैं या अलग हैं? धार्मिक कृत्यों के लिए प्रयुक्त इमारतों की तुलना प्रारंभिक स्तूपों और मंदिरों से कीजिए।

12. इस अध्याय में वर्णित धार्मिक परंपराओं से जुड़े अलग-अलग काल और इलाकों की कम से कम पाँच मूर्तियों और चित्रों की तसवीरें इकट्ठी कीजिए। उनके शीर्षक हटाकर प्रत्येक तसवीर दो लोगों को दिखाइए और उन्हें इसके बारे में बताने को कहिए। उनके वर्णनों की तुलना करते हुए अपनी खोज की रिपोर्ट लिखिए।

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए :

ए.एल. बाशम, 1985
द वंडर दैट वाज़ इंडिया,
रूपा, कलकत्ता।

एन.एन. भट्टाचार्य, 1996
इंडियन रिलिजियस हिस्टोरियोग्राफ़ी,
मुंशीराम मनोहरलाल,
नयी दिल्ली।

एम.के. धावलीकर, 2003
मॉन्युमेंटल लीगेसी ऑफ़ साँची,
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,
नयी दिल्ली।

पॉल डुंडास, 1992
द जैनस्,
रूटलेज, लंदन।

गेविन फ्लड, 2004
इंट्रोडक्शन टू हिन्दुइज़्म,
कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस,
कैंब्रिज।

रिचार्ड एफ. गोम्ब्रिच, 1988
थेरवाद बुद्धिज़्म : ए सोशल हिस्ट्री फ्रॉम एंशियेंट बनारस टू मॉडर्न कोलंबो,
रूटलेज एंड केगन पॉल, लंदन।

बेंजामिन रॉलैंड, 1967
द आर्ट एंड आर्किटेक्चर ऑफ इंडिया : बुद्धिस्ट/हिंदू/जैन,
पेंग्विन बुक्स, हार्मन्ड्सवर्थ।

ज़्यादा जानकारी के लिए आप निम्नलिखित वेबसाइट देख सकते हैं
http://dsal.uchicago.edu/images/aiis/

चित्रों हेतु श्रेय

विषय 1

चित्र 1.1, 1.2, 1.3, 1.4, 1.5, 1.6, 1.8, 1.11, 1.12, 1.13, 1.14, 1.15, 1.16, 1.20, 1.22, 1.23, 1.26, 1.28, 1.29, चित्र 1.30 अभ्यास कार्य

भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण तथा भारतीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

चित्र 1.7, 1.9, 1.10, 1.17, 1.18, 1.19, 1.21, 1.24:

प्रोफ़ेसर ग्रेगोरी एल. पोशेल

चित्र 1.27:

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केंद्र, नयी दिल्ली

विषय 2

चित्र 2.1: अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ़ इंडियन स्टडीज़, गुड़गाँव

चित्र 2.2, 2.6: भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण

चित्र 2.3, 2.5, 2.10:

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केंद्र, नयी दिल्ली

चित्र 2.4, 2.7, 2.9, 2.12, 2.13: भारतीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

चित्र 2.8: वाइकीपीडिया

विषय 3

चित्र 3.1, 3.10: भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण

चित्र 3.3, 3.4, 3.5, 3.6, 3.7, 3.8, 3.9: भारतीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

विषय 4

चित्र 4.1, 4.5, 4.8, 4.9, 4.12, 4.13, 4.14, 4.15, 4.16, 4.17, 4.18, 4.19, 4.21, 4.22, 4.23, 4.24, 4.25, 4.26, 4.27, 4.29, 4.31, चित्र 4.32 और 33 अभ्यास कार्य में

अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ़ इंडियन स्टडीज़, गुड़गाँव

चित्र 4.2: वाइकीपीडिया

चित्र 4.3, 4.11, 4.28, 4.30:

सांस्कृतिक स्रोत एवं प्रशिक्षण केंद्र, नयी दिल्ली

चित्र 4.4, 4.6, 4.7, 4.20: भारतीय संग्रहालय, नयी दिल्ली